स्फूर्ति और मस्ती से भरा बुढ़ापा
— श्रीराम शर्मा आचार्य —

स्फूर्ति और मस्ती से भरा बुढ़ापा

❖

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

❖

प्रकाशक–
युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि
मथुरा

द्वितीय बार १९९३ [मूल्य : ३-०० रुपया

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना
मथुरा (उ० प्र०)

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

मूल्य : ३-०० रुपया

मुद्रक :
युग निर्माण प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

मनुष्य का दीर्घ जीवी होना संभव

आदमी की उम्र कितनी हो सकती है या कितनी होनी चाहिए। इस प्रश्न का मोटा उत्तर यही हो सकता है कि जितने समय में प्राणी की हड्डियाँ परिपक्व स्थिति तक पहुँचें उससे पाँच गुनी जीवन अवधि होनी चाहिए। मनुष्य का अस्थि संस्थान प्रायः २५ वर्ष में पकता है इसका तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्य को एक सौ वर्ष जीना चाहिए। यही उसका स्वाभाविक आयुष्य है। घोड़ा ५ वर्ष में युवा होता है और २५ वर्ष जीता है। कुत्ता दो वर्ष में प्रौढ़ होता है और १० वर्ष जीता है। इसी प्रकार अन्यान्य प्राणियों की स्वाभाविक आयु का भी विवरण बनाया जा सकता है।

कम उम्र में मर जाने को एक प्रकार की दुर्घटना ही कहा जा सकता है, उसे अकाल मृत्यु का नाम भी दिया जा सकता है। दीपक में रात भर जलाने को जितना तेल भरा हो किन्तु उसके पेंदे में छेद हो जाय, बत्ती खिसककर तेल में डूब जाय, हवा के झोंके से लौ बुझ जाय तो वह पूरी रात जलने के स्थान पर कुछ ही मिनटों में बुझ सकता है। जीवन के सम्बन्ध में भी यही बात है। वह टूट तो बाहरी प्रहारों से भी सकता है किन्तु अधिकांश के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। वे उपेक्षा करके, प्राकृतिक नियमों की अवहेलना करने में विद्रूप होकर अकाल मृत्यु का कारण बनते हैं। अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य ही अधिक अकाल मृत्यु मरता है।

गर्भाधान से लेकर प्रसव पर्यन्त किसी वर्ग के प्राणी यौनाचार नहीं बरतते किन्तु मनुष्य है जो उस अवधि में भी वासनाओं की तृप्ति किया करता है। गर्भिणी के रहन-सहन, आहार-विहार में उतनी सावधानीनहीं बरती जाती जितनी कि बरती जानी चाहिए।

इसका परिणाम यह होता है कि कितने ही बालक गर्भपात के शिकार हो जाते हैं। कितने ही जन्मने के उपरान्त वातावरण की अनुकूलता के अभाव में प्राण खो बैठते हैं। इन दिनों विकासशील देशों में मृत्यु की दर घट नहीं रही वरन् बढ़ रही है। गणना के अनुसार १००० बालकों के जन्मने पर उनमें से २५ जन्मते ही या उसके कुछ ही समय उपरान्त मर जाते हैं। उसके उपरान्त भी उन्हें कितनी शारीरिक मानसिक व्यथा घेरे रहती है। जिससे वे स्वयं तो कुछ पुरुषार्थ करने लायक रहते नहीं, दूसरों को भी अपने संबंध में व्यस्त चिन्तित रखते तथा दवा-दारू में खर्च करने के लिए बाधित करते हैं।

अपने देश में वह यौवन काल भी कुछ ही समय के लिये आता है जिसमें वे कुछ कहने लायक पुरुषार्थ करने की स्थिति में रहते हैं। महिलायें यदि अल्प विकसित हैं तो उन्हें गर्भ धारण की विपत्ति में बड़ी आयु वालों की तुलना में जल्दी ही घिर जाना पड़ता है। आमतौर में एक या दो बच्चा जनने के उपरान्त उनका शरीर खोखला हो जाता है और ज्यों-त्यों करके घर गृहस्थी के काम निपटाने पर भी उनकी स्थिति असहाय रह जाती है। यौवन काल में मनुष्य को जो पुरुषार्थ करना चाहिए और प्रगति के पथ पर आगे बढ़ना चाहिए, पारिवारिक व्यवस्था, व्यवसाय में जो उनका योगदान होना चाहिए वह नहीं बन पाता। ऐसी दशा में अपंग स्तर की जिन्दगी कुछ लम्बी भी हुई तो निज की प्रसन्नता तथा सामाजिक प्रगति की दृष्टि से उनका कुछ महत्वपूर्ण योगदान नहीं होता। उनका समय बच्चे-कच्चों से निपटने और पालन-पोषण करने भर की गतिविधियों में खप जाता है। ऐसी दशा में वे क्या तो अपने लिए और क्या समाज के लिए कर सकती हैं। समुचित शिक्षा व्यवस्था न होने पर वे शिशु पालन का दायित्व निभाने और उन्हें साहस

सद्‌गुण, निरोग परिपुष्ट बना सकने की भूमिका भी नहीं निभा सकती।

पुरुषों को बुढ़ापा कितनी जल्दी आ घेरता है। इसे देखकर आश्चर्य होता है। किशोरावस्था में उन्हें फूल जैसा खिलता देखा जा सकता है। किन्तु हँसने-हँसाने के दिन थोड़े से होते हैं। वयस्क होते ही आजीविका उपार्जन के भारी-भरकम दायित्व कन्धों पर आते हैं। इस मँहगाई और बेकारी के समय में गुजारे की सुव्यवस्था जमा लेना भी आसान काम नहीं है। उसमें आये दिन अनेकों अड़-चनें खड़ी होती हैं। श्रमशील शरीरों को जिस स्तर का आहार-विहार मिलना चाहिए, वह बड़े संयुक्त परिवार के दायरे में बन नहीं पाता। ऊपर से कितनी प्रकार की चिन्तायें छाई रहती हैं सो अलग। पारस्परिक मन-मुटाव, प्रतिस्पर्द्धा, ठगी, विश्वासघात, असहयोग के व्यवहार अपने और पराये द्वारा किये जाते रहते हैं। इससे निपटने के लिए जैसा कौशल धैर्य और मनोबल चाहिए उसका एक अंश भी संचित नहीं होता फलस्वरूप मनुष्य कागज की नाव की तरह जरा सी नमी का दबाव पड़ते ही तली में बैठ जाता है।

असंयम स्वास्थ्य की बर्बादी में प्रधान कारण है। भूख से कहीं अधिक खा जाना। अभाव में जीव के चटोरेपन में सदा ललचाते रहना। देखने में यह लोक प्रचलन भर प्रतीत होता है, किन्तु उतने भर से ही पेट सड़ने लगता है और शुद्ध रक्त के स्थान पर विषाक्तता उगाने लगता है जो समस्त शरीर में फैलती है। जहाँ भी दाँव लगता है वहीं से विस्फोट की तरह विचित्र रोगों के रूप में फूट पड़ता है। जिह्वा का असंयम मनुष्य की स्वाभाविक आयु को एक चौथाई कर देता है।

दूसरा असंयम जननेन्द्रिय सम्बन्धी है। यह ऐसा कोमल अव-

यव है कि उसका उपयोग जीवन में यदाकदा ही होना चाहिए। मनोविकार के लिए नहीं वंश वृद्धि के अनिवार्य प्रतीत होने पर ही कामुकता की दिशा में चिन्तन एवं प्रयास को गति मिलनी चाहिए। अन्यथा दाम्पत्य जीवन भी दो मित्रों की तरह निर्धारित कार्यों में एक–दूसरे का हाथ बँटाते हुए भली प्रकार जिया जा सकता है। किन्तु यदि कामुकता को सस्ता मनोरंजन मान लिया जाय तो समझना चाहिए कि जीवन स्वत्व निचोड़ डालने की कुचेष्टा की जा रही है और उसका परिणाम वही होगा जो दीमक द्वारा चटकर लिये जाने पर किसी पेड़ की दुर्गति होती है। कामुकता में अनावश्यक रस लेनें लगना अपने आपको निचोड़ डालने के समान है। उससे शरीर बल, ओज एवं तेजस और भावना क्षेत्र का वर्चस् तेजी से नष्ट होता है और रुग्णता ग्रसित पेड़ की तरह मनुष्य कभी भी धराशायी हो सकता है।

नशेबाजी का प्रचलन भी ऐसा है जिसकी कुटेव में फँस जाने पर मनुष्य चौथाई से आधी आयु में कटौती करा लेता है। इससे पूर्व भी श्वाँस, दमा, खाँसी, कैंसर जैसे रोगों में से जिस किसी का भी दाँव चढ़ जाता है वह भी अनेक उलझनों समेत गर्दन पर आ चढ़ता है। इसे स्वनियोजित आत्महत्या ही कहा जा सकता है।

अवयवों की पृथक-पृथक कार्य क्षमता का पर्यवेक्षण किया जाय तो इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि कोई मनुष्य अपने अंगों की तोड़-फोड़ न करे तो वह सौ वर्ष से भी कहीं अधिक जी सकता है। गुर्दे २०० वर्ष, हृदय ३०० वर्ष, त्वचा १००० वर्ष, फेंफड़े १५०० वर्ष, हड्डियाँ ४००० वर्ष तक जीवित रह सकती हैं। मस्तिष्कीय घटक भी २०० वर्ष तक काम करते रह सकते हैं। वर्तमान शल्य चिकित्सा के विकास को देखते हुए यह भी हो सकता है कि अंग दुर्बल होते चलें और उन्हें बदलते चला जाय। इस प्रकार मनुष्य कई सौ वर्ष भी जी सकता है।

समय से पहले बुढ़ापा क्यों आये :

बुढ़ापा क्यों और कैसे आता है ? इससे निजात कैसे पायी जाय—इस विषय पर आज देश-विदेश की विभिन्न शोधशालाओं में गहन अनुसंधान कार्य चल रहे हैं। अधिकांश मामलों में देखा जाता है कि व्यक्ति की बायोलॉजिकल एज (कायिक आयु) उसकी क्रोनोलॉजिकल एज (मियादी आयु) से बढ़ी-चढ़ी होती है। आखिर उसका कारण क्या है ? बुढ़ापा असमय क्यों आ धमकता है—इन सभी बातों के सूक्ष्मता से अध्ययन के लिए 'जरा-विज्ञान' अथवा 'जेरानटोलॉजी' नामक विज्ञान की अब एक नयी शाखा की शुरूआत की गई है, जिसमें वैज्ञानिक इस बात को खोजते हैं कि क्या इस स्थिति को कुछ काल तक टाला जा सकता है अथवा क्या व्यक्ति की कायिक आयु को कुछ घटाया जा सकता है, किन्तु ऐसा तभी संभव है, जब वैज्ञानिक इसके कारणों का पता लगा सकें और इसके पीछे काम करने वाले कारणों को उद्घाटित कर सकें। इस दिशा में प्रयास जारी हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि शरीर में जल्दी ही अशक्तता के लक्षण प्रकट होने का कारण शरीर कोशाओं में होने वाली म्यूटेशन की प्रक्रिया है। इस सिद्धान्त के अनुसार म्यूटेशन से प्रभावित कोशायें फिर अपनी ही जैसी कोशाओं को जन्म देने लगती हैं, जिनकी क्रियायें असामान्य होती हैं, फलतः शरीर में विपरीत लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

एक अन्य मत के अनुसार ऐसा क्रास लिंकिंग के कारण होता है, जिसमें महत्वपूर्ण अणुओं के बीच बड़े पैमाने पर बन्ध (बोण्ड) का निर्माण हो जाता है। इन बन्धों के कारण कोशायें आगे अपना सहज-स्वाभाविक क्रिया-कलाप जारी नहीं रख पातीं और त्वचा, रक्त वाहिनियाँ कठोर बनने लगती हैं।

किन्तु वैज्ञानिकों के एक बड़े समूह का विचार है कि ऐसा व्यक्ति के स्वयं के रहन-सहन, चिन्तन-मनन एवं पर्यावरण के अभाव के कारण होता है। उनके अनुसार अचिन्त्य-चिन्तन का दुष्प्रभाव आरम्भ में तंत्रिका कोशाओं पर पड़ता है और बाद में फिर अन्य तन्त्रों की कोशायें प्रभावित होती चली जाती हैं।

हमारा मस्तिष्क एक विशेष प्रकार की कोशा का बना होता है, जिसे न्यूरॉन सेल्स कहते हैं। ये परस्पर न्यूरोट्रांस्मीटर द्वारा संदेशों का आदान-प्रदान करते-रहते हैं। ये ट्रांस्मीटर विशेष प्रकार के रासायनिक यौगिक हैं। एसीटाइलकोलीन इनमें सबसे प्रमुख है। मानवी मस्तिष्क की लगभग १७ प्रतिशत तंत्रिका कोशायें इसी रासायनिक यौगिक से आपसी विचार विनिमय करती हैं। इन कोशाओं में एक विशेष प्रकार का एन्जाइम भी पाया जाता है, जिसे सी० ए० टी० कहते हैं। यह एन्जाइम एसीटाइलकोलीन की रचना में मदद करता है। जब इस यौगिक का काम समाप्त हो जाता है तो एस्टीरेज एन्जाइम इसे समाप्त कर देता है। संदेशवाहक एसीटाइल-कोलीन प्राय: दो प्रकार के होते हैं-मस्कारनिक तथा निकोटिनिक। रीढ़ की कोशाओं से संदेश लेकर उसे स्केलेटल मसल तक पहुँचाना तथा मांसपेशियों का नियन्त्रण करना—यह कार्य निकोटिनिक यौगिक सम्पादित करता है। जब इस रिसेप्टर की सक्रियता समाप्त हो जाती है, जोकि एण्टीबॉडी के निर्माण के कारण होता है, तो हाथ-पैर की माँसपेशियाँ ढीली पड़ जाती हैं। पेशियों पर से नियंत्रण उठ जाने के कारण हाथ-पैर काँपने लगते हैं। यही बुढ़ापा है।

बुढ़ापे का एक अन्य लक्षण है स्मरण शक्ति का लोप होना। ऐसा क्यों होता है ? इसके उत्तर में वैज्ञानिकों का कहना है कि ऐसे लोगों के तंत्रिका तन्तुओं में फन्दे पड़ जाते हैं, जो बाद में तांत्रिकीय चकत्तों के रूप में प्रकट होते हैं, साथ ही ब्रेन के कॉण्ट्रेक्ट एवं हिपो-

केम्पस वाले भाग में न्यूरानों की कमी पड़ जाती है। तंत्रिकाओं में फंदे और चकत्तों के कारण वैज्ञानिक शरीर में एल्यूमीनियम का जमाव मानते हैं, जिसका निराकरण वे सोडियम क्लोराइड बताते हैं। मगर यह तो बुढ़ापे के कुछ एक कारण और उसके निदान हुए।

बुढ़ापे के अन्य कारणों को खोजने एवं उनका हल निकालने की दिशा में अल्बर्ट आइंस्टोन आयुर्विज्ञान महाविद्यालय (अमेरिका), मेण्टल हैल्थ फाउण्डेशन (लन्दन) एवं योरोपीय अनुसंधान विश्व-विद्यालय (स्विट्जरलैण्ड) के शरीर शास्त्रियों ने सराहनीय कार्य किये हैं। वे मस्तिष्क पर बुढ़ापे के प्रभावों के अध्ययन के लिए एक विशेष प्रयोग कर रहे हैं, जिसे "प्रोजीट्रान एमीशन टोमोग्राफी" कहते हैं। उनका कहना है कि शरीर कोशिकाओं की संख्या में ह्रास और उनकी जीवन अवधि में कमी आना ही सम्भवतः बुढ़ापे का मुख्य कारण है उनका यह भी कहना है कि उम्र के साथ-साथ शरीर की ताप नियंत्रक क्षमता में कमी आने लगती है, जिससे बूढ़ों में सर्दी अथवा गर्मी सहने की सामर्थ्य घट जाती है। इस स्थिति में विटामिन "डी" की कमी के कारण हड्डियाँ भी कमजोर पड़ने लगती हैं। वृद्धावस्था में शरीर प्रतिरोधी क्षमता में ह्रास को शरीर विज्ञानी अस्थायी बताते हैं और कहते हैं कि एण्टीआक्सीडेंण्ट के प्रयोग से इसे दूर किया जा सकता है। वार्धक्य की स्थिति में हृदय रोग और लकवा की रोकथाम के लिए वैज्ञानिक रक्त चाप के नियन्त्रण पर जोर देते हैं और पेशियों को सुसंगठित बनाये रखने के लिए हल्का थकान रहित व्यायाम उपयोगी है।

रूस के वैज्ञानिकों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण शोध कार्य किए हैं। "कीव जरा विज्ञान संस्थान" के शोधकर्मी ब्लादिमिर फ्रोलकिस का कहना है कि हमारे विभिन्न अंग-अवयवों में शिथिलता व निष्क्रियता का मुख्य कारण तत्सम्बन्धी प्रणालियों के नियन्त्रक 'जीन' में दुर्बलता आना है। वे कहते हैं कि उत्थापन

प्राय: प्रोटीन-संश्लेषण एवं ऊर्जा प्रक्रिया में ही देखा जाता है जिसका दुष्परिणाम न्यूरान झिल्लियों में होता है, जो बाद में पूरे मस्तिष्क को अपने प्रभाव-क्षेत्र में ले आता है।

बुढ़ापे के साथ-साथ जो एक अन्य प्रक्रिया की शुरूआत होती है, उसके अन्तर्गत अंग-प्रत्यंगों की कार्यक्षमता घटने लगती है। विशेषज्ञों का विश्वास है कि प्रक्रिया का आयुष्य पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है।

ऐसी स्थिति में इन असामयिक शारीरिक परिवर्तनों से छुटकारा पाने का अब एक ही मार्ग शेष रह जाता है वह है—योग साधना, ध्यान-धारणा। इस क्षेत्र में जर्मनी, स्विट्जरलैण्ड एवं अमेरिका के वैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग परीक्षण किये हैं, जिनके परिणाम काफी उत्साहवर्धक रहे हैं।

मूर्धन्य वैज्ञानिक जोविंग ने ध्यान प्रक्रिया का अध्ययन रक्त-रसायनों पर किया। प्रयोग के अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इसके द्वारा शरीर के प्लाज्मा कार्टीसोल, प्लाज्मा प्रोलेक्टिन आदि रसायनों का स्तर घटाया जा सकता है। बेंसन ने उच्च रक्तचाप के रोगियों के लिए इसे उपयोगी बताया। इसी प्रकार के परिणाम न्यूरानों एवं त्वचा की क्षमता में भी देखे गये। कुल मिलाकर इसकी परिणतियों पर विज्ञान क्षेत्र में संतुष्टि व्यक्त की गयी है। वैज्ञानिकों ने एक स्वर से यह स्वीकार किया है कि असमय बुढ़ापा रोकने की यह एक आसान व अचूक पद्धति है। वे योगासनों को कठोर व्यायाम की तुलना में श्रेष्ठ बताते हैं और कहते हैं कि थकाने वाले व्यायामों से ऊर्जा का ह्रास होता है।

इन परिणामों को देखते हुए शरीर विज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि नियमित रूप से लम्बे काल तक योगाभ्यास का अवलम्बन लिया जाय, तो बहुत हद तक असामयिक बुढ़ापे को टाला जा सकता है।

मानवी विकास एवं सौभाग्य का सर्वोत्तम-काल

उठते यौवन का उत्साह और सौन्दर्य विदित है, उसमें मस्ती भी रहती है। इतने पर भी अनुभव और व्यक्तित्व विकसित न हो पाने के कारण उनके ऐसे सुनिश्चित कदम नहीं उठते जो कठिनाइयों का घना रास्ता पार करते हुए भी लम्बी मंजिल तक विश्वासपूर्वक पहुँच सके। प्रौढ़ावस्था प्रकारान्तर से परिपक्वता की स्थिति में होती है, जिसमें अधिक जानकारी और अधिक जिम्मेदारी जुड़ी रहती है। आत्म विश्वास और व्यवहार कौशल भी तब तक बहुत बढ़ चुका होता है। ऐसी दशा में बड़े वजन उठाने और बड़े लाभ अर्जित करने की संभावना भी अधिक रहती है। प्रौढ़ता को दृढ़ता और परिपक्वता का पर्याय माना जाता है— यह मान्यता बहुत हद तक सच भी है। यौवन का अल्हड़पन और आकर्षण अपनी जगह पर ठीक है, पर जहाँ तक समर्थता का सम्बन्ध है वह अधेड़ स्थिति की तुलना में हलका ही पड़ता है— यही कारण है कि महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सौंपते समय प्रौढ़ता का भी ध्यान रखा जाता है।

इतना होते हुए भी देखा जाता है कि प्रौढ़ आयु के लोग वृद्धावस्था की ओर तेजी से दौड़ते हुए पाये गये हैं। आधी उम्र होने से पूर्व ही लोग वृद्धों जैसे दीखने लगते हैं, शारीरिक सुन्दरता और बलिष्ठता गँवा बैठते हैं, बूढ़ों जैसी बोली बोलते और निराशा—अस-

थता जैसी बातें करते सुने जाते हैं। उसका कारण एक ही है कि प्रौढ़ावस्था के लिए जो संचय करना चाहिए था उसकी उपेक्षा की की। क्षमता का असमय अनावश्यक अपव्यय करके अपने को छूँछ बना लिया होता है, ऐसे ही लोग रोगों से संत्रस्त और दुर्बलता से ग्रसित दृष्टिगोचर होते हैं। लगता है असमय में ही जीवन अध्याय पूरा किया जा रहा है।

'दी साइकालॉजी आफ ह्यूमन एजिन्ग' के लेखक डी० बी० ब्रानले ने अग्रिम चौथाई शताब्दी तक और जी लेने के लिए पुरुषों के जीवन का मध्यकाल ४५ से ५० तथा महिलाओं के लिए ५०-५५ की अवस्था को माना है जबकि बाइबिल ३४ वर्ष को ही जीवन का मध्यकाल कहता है।' नवीनतम धारणा के अनुसार व्यक्ति तब तक मध्य जीवन के दहलीज तक नहीं पहुँचता जब तक वह अपने को अधेड़ न मान ले और यह ६० वर्ष तक पहुँच सकती है। हन्ट और हन्ट के शब्दों में 'अधेड़ावस्था मृत्यु का लेविल नहीं है, यह जीवन का महत्वपूर्ण भाग है।' मात्र थोड़े ही अधेड़ जो बीमारियों से अक्षम होकर जीवन शैली बदलने को बाध्य होते हैं और भविष्य के प्रति शंकाशील रहते हैं, इस वर्ग वालों की जीवनचर्या व्यवस्थित, सुस्थापित एवं परिपक्व पाई जाती है।

मेट्रोपोलिटन जीवन बीमा रिपोर्ट के अनुसार अवस्था वृद्धि के अनुपात से रोगवृद्धि नहीं बढ़ती। जहाँ १५–४४ वर्षीय लोगों में पुरातन रोगियों की संख्या ४० प्रतिशत थी वहीं ४५–६४ वर्ष वालों में ६० प्रतिशत ही हो पाई। १९७६ के अमेरिकी शिक्षा, स्वास्थ्य कल्याण विभागीय आख्यानुसार ४५ या अधिक वर्षीय काले लोगों में रक्तचाप दोष जहाँ ५० प्रतिशत व्यक्तियों में पाया गया वहीं गोरों में मात्र ३० प्रतिशत ही रहा। अधेड़ अनेक सेक्स रोगों से पीड़ित होते हैं किन्तु ये रोग आंशिक काल वाले ही होते हैं। डी० बी०

ब्रामली के अनुसार ४५ या अधिक वय वाले काम पर से बीमारी के कारण ही हटते हैं। इस अवस्था वाले पुरुष स्वास्थ्य के प्रति विशेष जागरूक रहा करते हैं। स्त्रियाँ तो अपनी उपेक्षा करके पति के स्वास्थ्य को अक्षुण्ण बनाये रखने की प्रवृत्ति रखती हैं। अपेक्षाकृत इस वय वालों में कम और महिलाओं में और भी कम आत्महत्या प्रवृत्ति पायी गयी।

जीवन सम्पदा के अपव्यय में आतुर लोग अपेक्षाकृत जल्दी अपनी क्षमता गँवा बैठते हैं और वृढ़ापे को असमय ही न्यौत बुलाते हैं जबकि सन्तोषी और धैर्यवान जो उपलब्ध है उसी का हँसते-हँसाते खर्च करने की नीति अपनाकर लम्बे समय तक निरोग एवं सक्षम बने रहते हैं,अमेरिकी गोरों तुलना में वहाँ बसने वाले काले लोग अधिक सुदृढ़ और दीर्घजीवी पाये जाते हैं। इसमें वंशानुक्रम नहीं उनका शान्त सुगम जीवन प्रवाह ही आधारभूत कारण है।

ई० बेलविन के अनुसार मध्य आयु वर्गीय लोगों को रेटीना तक प्रकाश पहुँचाने के लिए ६३ प्रतिशत अधिक प्रयास की आवश्यकता पड़ती है। पी० एस० टिमराज की पुस्तक 'डिवलपमेंटल फिजियोलाजी एण्ड एजिन्ग' में बताया गया है कि यद्यपि २०-४० की वय में ही १० प्रतिशत श्रवण शक्ति घट जाती है किन्तु अफ्रीकी लोगों में वातावरणीय प्रभाव के कारण लम्बी अवस्था तक श्रवण तन्त्र निष्प्रभावित रहते हैं। घ्राणेन्द्रिय की बहुत सी घटी क्षमताओं का पुनः विकास मध्य आयु में हो जाना सरल होता है।

'मिडिल एज' के लेखक आर० एम० बेलविन ने दावा किया है कि ४०-५० वर्षीय दक्ष कारीगरों की कार्य कुशलता–जागरूकता के कारण अधिकाधिक उत्पादक रही है। मेकलार लैण्ड आदि ने बताया है कि ड्राइविंग जैसी जटिल तकनीकी कार्यकुशलता अधेड़ वय में पहले की अपेक्षा इसलिए विकसित हो पाती है कि वृद्धता

के कारण जो क्षति होती है उससे अधिक लाभ अवस्थाजन्य अनुभवों के कारण जुटता जाता है।

'प्राइम टाइम' में एम० हन्ट और वी० हन्ट ने चिट्ठी की सार्टिंग करने वालों का उदाहरण प्रस्तुत किया है। ४५-४४ वर्षीय लोगों ने ३५-४४ आयु वर्ग वालों से अच्छे धैर्यपूर्ण कार्य सम्पादित किये। अनुभव के कारण इस आयु वर्ग वालों ने शारीरिक अपंगता उन जटिल कार्यों में भी नहीं पाई जिसमें उचित निर्णय के अभाव में अनेकानेक नवयुवक अंग-भंग कर डालते हैं।

कान्गाज तथा ब्रैडवे ने स्कूल जाने से पहले, माध्यमिक शालाओं नवयुवकावस्था और अधेड़ावस्था में ४८ व्यक्तियों के बुद्धिलब्धि लिये और सभी को विकासोन्मुख पाया। डी० पैपैलिया ने ३०-६४ वय वर्ग में संख्या स्मृति सम्बन्धी परीक्षा १९७२ में किये, इसमें उच्च लब्धवांक ५५-६४ वर्षीय लोगों ने ही अर्जित किये। वेल्बी तथा पैपैलिया की नैतिकता सम्बन्धी प्रयोग में ३५ से ४९ वर्षीय लोगों के प्राप्तांक उच्च रहे।

कलात्मक प्रतिभावानों और कृत्यों की सूची शिकागो के रोवुल हाउस की डिजाइनिंग करने वाले ४० वर्षीय फ्रैन्क लायट राइट से आरम्भ की जा सकती है। 'अप्पालैशियन स्प्रिन्ग' का रचनाकार ऐरन कोप्लान ४४ वर्ष का उन दिनों था। 'मोना लिसा' की पेन्टिग ५२ वर्ष की अवस्था में लीओनार्डो डा० बिन्ची ने तथा गुएर्निका की ५६ वर्षीय पिकासो ने की थी। मोसिआह की रचना हैन्डेल ने ५७ की आयु में की थी।

२० से ८० वय वालों में विधायिका उत्पादकता' में डब्लू० डेनिस ने पाया कि अधिकाधिक आउटपुट ४० या उसके अनन्तर वालों में होता है। 'एज एण्ड एचीवमेंट' के लेखक एम० सी० लेहमन

ने विभिन्न प्रकार की कलाओं में सर्वोत्कृष्टता विभिन्न वय वालों में पायी हैं।

'अर्ली एण्ड मिडिल एडल्टहुड' में एल० एल० ट्रा० ने पृष्ठ ३९ पर इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि विधायक कार्य सब प्रकार के सञ्जीभूत विकासों के समुच्चय पर ही आश्रित होते हैं जो जीवन के उत्तरार्द्ध वर्षों में ही हो पाते हैं।

बहुत से उच्चपदासीन अधिकारी, व्यापारी, सर्वोच्च शिक्षा सम्पन्न या अन्य उपलब्ध प्रतिष्ठित सज्जन वृद्ध अधेड़ वय के ही होते हैं। हन्ट और हन्ट के अनुसार परम्परागत पुरातन समाजों में शक्ति सूत्र धारक सर्वाधिक वय प्राप्त ज्ञान वृद्ध ही होते थे किन्तु आधुनिक समाज में शक्ति, धन और सम्मान मध्य वय वालों के हाथों में ही केन्द्रित है।

स्टेन्स तथा मैककुलो के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि तीस वर्षों से ऊपर वाले कर्मियों में ९० प्रतिशत लोग अपने कार्यों से सन्तुष्ट रहा करते हैं, यह प्रतिशतता आयु के साथ बढ़ी पाई गई। 'चेन्ज आफ इन्टरेस्ट विद एज' पुस्तक में ई० के० स्ट्रान्ग के उस प्रयोग का वर्णन है, जो ४० वर्षीय आयु वर्ग पर थे। इन लोगों ने अपने कार्य में उतनी ही रुचि दिखाई जितनी नौकरी खोजते समय एक विद्यार्थी युवक दिखाता है। व्यवसाय बदलने तथा नये हस्तगत करने में भी उनके उत्साह चार्ल्स लकमैन की तरह आए दिन दिखाई पड़ते हैं जिन्होंने ४० वर्ष की अवस्था में लीवर ब्रदर्स के प्रेसीडेन्ट जैसा पद त्यागकर स्थापत्य कला की ओर रुझान बढ़ाया। बी० न्यूगार्टेन ने ४०-५० वय वालों को खतरा उठाने में,५०-६० वय वाले अन्तर्निरक्षण करने में, ६०-७० वर्षीय वर्ग वालों को विश्व की जटिलता परखने में पटु पाया। १९६७ के एक दूसरे प्रयोग में उन्होंने ४०-६० वर्षीय १०० सफल व्यक्तियों को लिया और उन्हें एक ऐसे पुल की भाँति पाया

जो किशोरावस्था को वृद्धावस्था से जोड़ता है। हन्ट और हन्ट ने इसमें निरीक्षण करने और सही अर्थ निकालने की, आत्म विश्वास की और परिस्थितियों से सामना करने की प्रचुर शक्ति बताई है।

न्यूगार्टेन और मूर ने बताया है कि आर्थिक रूप से पिछड़े लोग जल्दी काम शुरू करते, शीघ्र शादी रचाते, जल्द बाप और दादा बन जाते हैं और ऐसे लोग अपने को शीघ्र ही अधेड़ मान बैठते हैं।

इरिकसन ने ४० से ऊपर वाली वय वालों को 'संस्थापना और अगली पीढ़ी का नेतृत्व' वाला बताया है। ए० स्टोर की पुस्तक 'अधेड़ अवस्था का नवीन जीवन' ३५ वर्ष तक व्यक्ति की एक तमन्ना लगभग पूरी हो जाने और नयी मंजिल, नई समस्यायें गढ़ लेने का' रहस्योद्घाटन करती है। उसे 'नवीन कठिनाइयों को खोजने तथा उन्हें परास्त किए बिना चैन कहाँ ?'

अत्याधुनिक खोजों में लेविन्सन तथा सहयोगियों की 'दी साइकोलाजीकल डिवलपमेंट आफ मेन इन अर्ली एडल्टहुड एण्ड दी मिडिल ट्रैडिशन' के अनुसार 'एक ने कितने इनाम पाये, महत्व नहीं रखता। महत्वपूर्ण है जीवन के ताने-बानों से आत्मा का सामजस्य स्थापन कितना हुआ ? एक व्यक्ति अच्छी प्रकार से जीवनयापन करता हुआ आदर्शों तक पहुँचता है किन्तु उसे अपनी सफलता उथली एवं तिक्त प्रतीत होती है। 'फ्रायड तथा गाँधी जैसे लोगों ने जहाँ अधेड़ावस्था में अपने को बना लिया वहीं डाइलन टामस तथा स्काट फिजराल उतना नहीं बना पाये। बैइलैन्ट तथा मैकआर्थर के शब्दों में 'चाहे मध्य जीवन कितना ही बिगड़ा हुआ, निराशमय एवं अशांत क्यों न हो— प्राय: यह व्यक्ति के लिए नव्य जीवन की घोषणा किया करता है। 'इतना ही नहीं, इन विद्वानों ने अधेड़ अवस्था को द्वितीय किशोरावस्था' कहकर सम्बोधित किया है।

यौवन में अपनी तरह का आकर्षण तो है, पर उसकी तुलना में प्रौढ़ावस्था भी किसी प्रकार भी हेटी नहीं पड़ती, उसमें परिपक्वता के लक्षण उभरते हैं और वे इतने समर्थ होते हैं कि व्यक्ति अधिक पराक्रम कर सके एवं अधिक सफल बन सके। कठिनाई एक ही है कि असंयम अपनाकर प्रौढ़ता उत्पन्न होने से पहले ही उसे जर्जर बना दिया जाता है। ऐसा भी होता है कि कई व्यक्ति उन दिनों अधिक परिपक्वता के आधार पर बन पड़ने वाले पराक्रम की योजना बनाने की अपेक्षा वयोवृद्धों की बिरादरी में बैठने की उतावली करते हैं और मरने के दिन गिनने लगते हैं। समर्थ का सदुपयोग बन पड़े तो कहा जा सकता है कि प्रौढ़ावस्था मनुष्य के विकास एवं सौभाग्य का सर्वोत्तम काल है।

वृद्धावस्था एक वरदान

वृद्धावस्था और दीर्घायुष्य मानव जीवन के लिए सृष्टा के सर्वश्रेष्ठ उपहार हैं। युवावस्था में जिसे उपलब्ध करने की कामना की थी, पर समयाभाव या यौवनोन्माद में वह सम्भव नहीं हो सका था, उसे आयुष्य के इस मोड़ में करने और सीखने का अवसर मिलता है। बुढ़ापे में अपने दीर्घकालीन अनुभवों का लाभ स्वयं तो उठाया ही जाता है, अन्यान्यों को आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने में भी उसका भरपूर उपयोग कर सकते हैं। वृद्धावस्था परिपक्वता की निशानी है जो परमात्मा पर अधिक विश्वास दिलाती और उसके आशीर्वाद एवं सहायता उपलब्ध कराती है। इसी अवस्था में आत्मोत्कर्ष के लिए, अगले जन्म के लिए विशेष पूँजी संचय की जा सकती है। आयु के उत्तरार्द्ध में मस्तिष्क को पूर्ण शान्त और चित्त को एकाग्र रखा जा सकता है और समय तथा परिस्थिति के अनुरूप अपने को ढाला जा सकता है। कालचक्र से शरीर जराजीर्ण होता रहता है,

पर मन और आत्मा की कोई आयु नहीं होती। उसे वृद्धावस्था में भी सरल, उत्साही, कर्मठ और सक्रिय बनाये रहा जा सकता है तथा देश, समाज और संस्कृति के पुनरुत्थान में स्मरणीय योगदान किया जा सकता है।

वृद्धावस्था की शुरूआत सामान्यतः ६५ वर्ष से मानी जाती है परन्तु देश, काल और परिस्थिति के अनुसार उसका स्वरूप भिन्न, भिन्न देखने को मिलता है। अच्छा कार्य करने योग्य स्वास्थ्य होने पर भी अधिकतर लोग वृद्ध माने जाते हैं। ढलती आयु में शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में शिथिलता आने लगती है, जिसका परिचय कमर झुकने, त्वचा में झुर्रियाँ पड़ने, बाल सफेद होने, अंग-अवयवों के जोड़ों में दर्द, हाथ कँपने, दाँत झड़ने तथा स्मरण शक्ति की क्षीणता, विकास के प्रति मनोयोग की कमी और भावनात्मक अस्थिरता के रूप में परिलक्षित होता है। बढ़ती आयु के साथ शारीरिक अंग-अवयवों की कार्य क्षमता घटने, वृद्धावस्था के कारणों और प्रभावों का अध्ययन विज्ञान की एक स्वतन्त्र शाखा ही बन गया है, जिसे जेरोन्टोलॉजी-जराविज्ञान कहते हैं।

वैज्ञानिकों ने बुढ़ापे का प्रमुख कारण अनुवांशिकता को माना है, परन्तु अब तक उसके पक्ष में प्रमाण जुटाने में वे असमर्थ रहे हैं। शरीर शास्त्रियों, चिकित्सा विशेषज्ञों का मत है कि वृद्धावस्था का मुख्य कारण शरीर के समस्त अंग-अवयवों को पोषण और आक्सीजन प्रदान करने वाले रक्त परिवहन संस्थान कार्डियोवैस्कुलर सिस्टम में उत्पन्न गड़बड़ी से होता है। सेन्टर फोर द स्टडीज आफ एजिंग, ड्यूक यूनिवर्सिटी के प्रख्यात जरा विशेषज्ञ डा० गुस्ताज न्यूमैन का कहना है कि वृद्धावस्था के कारणों में अन्तिम बात जिस पर जराविज्ञानी, चिकित्सा विशेषज्ञ और मनोवैज्ञानिक सभी एक मत से सहमत हैं, वह है— मनोवैज्ञानिक कारण। पारिवारिक असम्मान,

आर्थिक तंगी, जीवन का कोई लक्ष्य निर्धारित न होना, रचनात्मक चिन्तन व कार्य क्षमता का अभाव आदि अनेकों कारण ऐसे हैं जो जरा अवस्था को और अधिक जर्जरित करते रहते हैं।

चीन में वृद्धावस्था को शानदार एवं ईश्वर प्रदत्त एक वरदान माना जाता है, उनकी कामना सदैव दीर्घजीवन जीने की होती है। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने इस संसार को कर्मभूमि एवं सम्पूर्ण सुखों का घर मानते हुए पुरुषार्थी बनकर अदीन होकर सौ वर्ष तक जीवित रहने की कामना व्यक्त की है—

'जीवेम् शरदः शतम्', 'ऋगुयामः शरदः शतम् ।' 'प्रब्रयाम शरदः शतम्', 'अदीनः स्याम शरदः शतम् ।' कुर्वंन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

मूर्धन्य जरा विशेषज्ञों ने भी वृद्धावस्था पर किये गये अपने शोध निष्कर्ष में बताया है कि लम्बी उम्र तक सक्रिय दीर्घजीवन जीने वालों के पीछे मात्र वंशानुगत कारण ही नहीं है वरन् मानसिक प्रसन्नता, कड़ी मेहनत, दीर्घजीवी होने की प्रबल इच्छाशक्ति तथा संतुलित आहार-विहार है। आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं एवं सन्तुलित आहार से विश्वभर में वृद्धों की संख्या में वृद्धि हुई है। वैज्ञानिकों के अनुसार सामान्यतया मनुष्य की अधिकतम आयु ११० से ११५ वर्ष तक हो सकती है। बिल्काबाम्बा, इक्वेडोर, सोवियत संघ के अजर बेजान प्रान्त और काकेसस माउण्टेन में इससे भी अधिक लम्बी आयु के स्वस्थ व्यक्ति हजारों की संख्या में निवास कर रहे हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार अजर बेजान प्रान्त में ऐसे १४२०० व्यक्ति रह रहे हैं, जिनकी आयु सौ वर्ष से अधिक है। ओनातास के अनुसार सबसे अधिक उम्र १५० वर्षीय महिला ग्यूवदन अल्ला खूबेर की है।

प्रख्यात जरा विज्ञान सोसायटी के अध्यक्ष सुदैफ इमान वर्दियेफ ने अपने अनुसंधान में बताया है, पूर्ण दीर्घायु प्राप्त अधिकतर सीधे-सादे वे लोग हैं जो गाँवों में निवास करते हैं। इनमें से अधिकांश बेहद प्रसन्न-चित्त और स्वस्थ नजर आते हैं और अपनी कार्यक्षमता में नौजवानों को भी पीछे छोड़ देते हैं। श्री वर्दियेफ़ के अनुसार दीर्घआयु प्राप्त करने, अधिक दिनों तक जीने के लिए पहली शर्त यह है कि व्यक्ति को कोई न कोई रचनात्मक कार्य करना चाहिए और अपने आपको व्यस्त रखते हुए हर परिस्थिति का प्रसन्नतापूर्वक सामना करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। दूसरी शर्त है— दिन-चर्या नियमित हो और प्राकृतिक जीवन जिया जाय। तीसरी और अनिवार्य शर्त यह है कि खानपान नपातुला, सात्विक और सन्तुलित हो। कार्य व्यस्तता और नियमितता ही व्यक्ति को मस्ती प्रदान करती और सफलता की मंजिल तक पहुँचाती है। श्री वर्दियेफ के अनुसार वृद्धावस्था से बचने और दीर्घायु प्राप्त करने के लिये तीन बातों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए—(१) शारीरिक स्वास्थ्य (२) आर्थिक आत्म निर्भरता और (३) मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य।

दीर्घायु प्राप्त करने वालों में रूस के बाद बल्गारिया-वासियों का नाम आता है। नियमित दिनचर्या, प्राकृतिक जीवन, कार्य व्य-स्तता, कठिन परिश्रम के अतिरिक्त उनकी लम्बी आयु और अच्छे स्वास्थ्य का रहस्य आहार में स्वनिर्मित दही का नियमित सेवन है। चिकित्सा विशेषज्ञों के अनुसार वृद्धावस्था में दही आँतों को स्वस्थ रखता है, आँतें फूलती नहीं और हानिकारक जीवाणु उनमें अपना अड्डा नहीं जमा पाते। इस्लामाबाद के १३० वर्षीय वयोवृद्ध मियाँ हाफिज मोहम्मद कादिर ने अपने स्वास्थ्य और दीर्घजीवन का रहस्य अपनी साधारण आदतों, दैनिक दिनचर्या, प्रतिदिन पैदल

घूमना, कोई नशा न करना, सदैव प्रसन्न रहना और अधिकाधिक जीवन जीने की प्रबल आकांक्षा को बताया है। जापान के शिचेजिये इजुमी भी अपनी जिन्दगी के १२० वर्ष पूरे कर चुके हैं तथा इस उम्र में भी वे अपने को नवयुवकों जैसा ताकतवर अनुभव करते हैं।

वर्तमान परिवेश में बढ़ती हुई तकनीकी सभ्यता से वृद्धों की उपयोगिता का मूल्यांकन उनके अपने ही तथाकथित उच्च शिक्षित बालकों द्वारा कम आँका जाने लगा है। वृद्धजन उपेक्षा के शिकार होते जा रहे हैं जिसके कारण सामाजिक मूल्यों की दिशाधारा ही बदल गयी है। ढलता आयुष्य, गिरता स्वास्थ्य, आर्थिक तंगी और व्यावहारिक असम्मान से छुटकारा पाने के लिए नैतिक, बौद्धिक विकास के लिए प्रत्येक दीर्घायुष्य और सुखमय जीवन जीने के इच्छुक व्यक्ति को स्वावलम्बी बनना, कठोर परिश्रम करना और रचनात्मक कार्यों में रुचि लेना अनिवार्य होना चाहिए, जिससे वे जीवन भर स्वस्थ और स्वावलम्बी बने रह सकते हैं तथा वृद्धावस्था में समाज तथा राष्ट्र की बेहतर सेवा करते हुए आत्म सम्मान का गौरव हासिल कर सकते हैं।

बूढ़ा होने की तो बात ही न सोचें

बाल्यकाल, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था के ये चार प्रमुख चरण बतलाये गये हैं। बाल्यकाल एवं युवावस्था को जीवन का पूर्वार्द्ध तथा प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था को उत्तरार्द्ध माना जाता हैं। पूर्वार्द्ध में शारीरिक स्वास्थ्य, स्फूर्ति एवं ताजगी तथा मानसिक दृष्टि से अधिक सामर्थ्यवान् होने की बात पर अधिक बल दिया गया है। जीवन के उत्तरार्द्ध के विषय में यह माना जाता है कि शरीर रोगी व दुर्बल तथा मानसिक दृष्टि से व्यक्ति शिथिल बन जाता है, जिसे सठियाना कहा गया है। क्रिया-कलापों में असामान्यता अनिर्णय की स्थिति होने के कारण ही यह नाम दिया है।

प्रायः यह देखा जाता है कि आयुष्य के इस अन्तिम चरण में व्यक्ति के हाथ-पाँव हिलने लगते हैं, कमर झुक जाती है, आँखें अपने को पहचानने में भी असमर्थ हो जाती हैं तथा कान की श्रवण शक्ति जाती रहती है। मस्तिष्क की बोध व चिन्तन–मनन सामर्थ्य भी प्रायः लुप्त हो जाती है, प्रायः ऐसी अवस्था में व्यक्ति दूसरों की सहायता–सहयोग से ही अपने जीवन की गाड़ी खींचता रहता तथा मृत्यु के अन्तिम क्षणों की प्रतीक्षा करता रहता है। इसी कारण सरकार ने भी नौकरी-पेशा के अन्तर्गत एक आयु सीमा निर्धारित की है तथा उसके उपरान्त व्यक्ति को आराम करने का मौका दिया है। पश्चिम में इसे मेल मीनोपाज भी कहते हैं, पर वस्तुस्थिति ऐसी है नहीं।

इसे एक सामान्य-सी घटना—जीवन क्रम का एक चरण ही

माना जा सकता है, इसे आज की अव्यवस्थित जीवन प्रणाली की परिणति ही कहा जा सकता है कि व्यक्ति ५८ या ६० वर्ष की अवस्था में रिटायर्ड घोषित कर दिया जाता है अन्यथा समाज में कई ऐसे जीवट सम्पन्न व्यक्ति हुए हैं जिनने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक ताजगी, स्फूर्ति व प्रसन्नता को यथावत् बनाये रखा। प्रारम्भिक जीवन-क्रम से उल्टे उनके जीवन के उत्तरार्द्ध में ही अद्भुत कर्मठता, पौरुष तथा उत्कृष्ट साहस का प्रकटीकरण हुआ। भगवान् बुद्ध ८२ वर्ष की आयु में निर्वाण को प्राप्त हुए। इस आयु तक वे पदयात्रा आदि कार्यों में संलग्न रहे। महाभारत कालीन द्रोणाचार्य शतायु पार कर चुके थे। उस अवस्था में रणसंग्राम में उनकी भूमिका तथा प्रत्यक्ष मार्गदर्शन सामान्य दृष्टि में अत्यन्त आश्चर्य का विषय है। गांधीजी ने ५१ वर्ष से ७७ वर्ष की आयु में ही स्वतन्त्रता संग्राम में अग्रणी भूमिका निभाई। शरीर व मन दोनों ही दृष्टि से उनने महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किये। डाण्डी यात्रा, १९४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन आदि उनके जीवन की उल्लेखनीय घटनायें हैं। अन्यान्य उत्कृष्ट साहित्य की रचना भी उनने इसी अवस्था में की। विनोबा ने भी जीवन के उत्तरार्द्ध में ही भूदान हेतु पदयात्रायें की। बाबू कुँवरसिंह का नाम इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है, जिनने ८२ वर्ष की आयु में भी युद्ध में अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिये थे। हाल में ही अमेरिका के 'फिजिकल कल्चर' पत्र के संचालक श्री बर्नार मैकफैडन अपनी ८१ वर्ष की अवस्था में पैराशूट से कूदे थे, यह कार्य उनकी जवानी का ही द्योतक है। सर चिचेस्टर द्वारा उतरती आयु में सरकण्डे की नाव से सारे विश्व की परिक्रमा को कौन भुला सकता है।

वैज्ञानिकों ने भी अब इस बात पर सहमति प्रकट की है कि प्रकृति ने मनुष्य को १०० से २०० वर्ष तक सहज रूप से जीने की

क्षमता प्रदान की है। उनका कहना है कि शरीर विज्ञान से सम्बन्धित नियमों का सही ढंग से पालन किया जाय तो मनुष्य निस्संदेह दीर्घायु हो सकता है, साथ ही उनने उन मान्यताओं का खण्डन भी किया जिसमें उम्र वृद्धि के साथ-साथ शरीर के वृद्ध होने की बात कही जाती है तथा यह नवीन सिद्धांत प्रतिपादित किया कि शरीर सदा एक जैसा बना रहता है, क्योंकि इसके कोषाणु नित्य नियमित मरते-जन्मते रहते हैं। यह नूतन परिवर्तन की प्रक्रिया बन्द तभी होती है जब शरीर की ग्रन्थियाँ अक्रियाशील हो जातीं तथा धमनियाँ कड़ी हो जाती हैं। इन दोनों के अक्षम होने पर ही शरीर रोगाणुओं का शिकार बनता तथा निरन्तर जर्जर होता चला जाता है।

अब यह प्रश्न उठता है कि ग्रन्थियाँ अक्रियाशील तथा धमनियाँ कठोर क्यों हो जाती हैं? इसके उत्तर में वैज्ञानिकों का मत है कि आहार में पोषक तत्वों का अभाव तथा परिश्रम-पुरुषार्थ की कमी ही बुढ़ापे को एक तरह से आमंत्रण देती है। यह बुढ़ापा ऐसी स्थिति होने पर कभी भी आ सकता है, उम्र का कोई बन्धन नहीं है। अध्ययनरत वैज्ञानिक दल ने पश्चिमोत्तर भारत की 'हुँजा' जाति का उदाहरण प्रस्तुत किया जो कभी बीमार नहीं पड़ते तथा काफी समय तक जीवित भी रहते हैं। खोजोपरान्त उनका सात्विक व पोषक आहार तथा परिश्रमरत जीवन ही इसका प्रमुख कारण पाया गया है। यही स्थिति काकेशस, ताशकन्द, कजाकिस्तान गिलगित हिमालय के हृदय उत्तराखण्ड में रहने वाले नागरिकों की है।

इनके अतिरिक्त वैज्ञानिकों द्वारा बुढ़ापे का लक्षण प्रायः मानसिक विकृतियों को बतलाया गया है। क्रोध, चिन्ता, भय, आशंका और अविश्वास के आगमन से रक्त में कई रासायनिक परिवर्तन होने लगते हैं। हृदय गति तीव्र एवं धमनियाँ संकुचित हो जाती हैं जिससे रक्त प्रवाह में बाधा पहुँचती है, इससे मनुष्य शीघ्र ही बुढ़ापे की गोद में चला जाता तथा मृत्यु का शिकार हो जाता है।

उपचार रूप में वैज्ञानिकों ने यह सुझाव प्रेषित किया है कि वृद्धावस्था की समीपता आने पर मनुष्य को अपनी कार्य शक्ति को न तो विराम ही देना चाहिए और न निवृत्त होकर हाथ पर हाथ रखकर कोने में बैठ जाना चाहिए। इस प्रकार की निष्क्रियता से मनुष्य अशक्त बनता है। युवकों की अपेक्षा वृद्धों पर अवकाश के बड़े बुरे परिणाम देखने को मिले हैं। जो भी वृद्ध शक्ति में ह्रास का अनुभव करें उन्हें विश्राम की अपेक्षा उनकी योग्यता और क्षमतानुसार काम दिया जाना चाहिए। उनकी क्रमशः पड़ती जा रही मन्दगति को कुछ मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर प्रोत्साहित करना चाहिये। यदि दिनचर्या मानसिक और तात्विक रूप से व्यस्त रखी गई तो उसमें गति बढ़ेगी। आश्चर्य नहीं कि वे नवयुवकों से भी वाजी मार लें। इस प्रकार वे नीरस जीवन की अपेक्षा सरस और सक्रिय जीवन व्यतीत करने लगेंगे। अनुभव का जखीरा साथ होने के कारण वे अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

जीवन प्रणाली में मामूली-सा हेर-फेर करके भी हम जीवन अवधि में वृद्धि कर सकते हैं। आहार-बिहार सम्बन्धी उपक्रम में थोड़ा-सा उलट-पलट ही कायाकल्प कर सकता है। जिस अन्न को तल–भूनकर निर्जीव कर दिया जाता है वहीं अंकुरित और, उबालकर अथवा वाष्प द्वारा पकाकर खाने से अधिक जीवनी शक्तिदायक और सुपाच्य हो जाता है। यह भ्रम जितना शीघ्र निकल सके उतना अच्छा है कि अधिक चिकनाई और दूध-मलाई अथवा मछली-अण्डा खाने वाले ही स्वस्थ रह सकते हैं और बुढ़ापे में अधिक पौष्टिक आहार दिया जाय तो बुढ़ापा देर से आवेगा वरन् दीर्घजीवियों का कहना है कि वे सुपाच्य सरल और सादा प्राकृतिक अथवा उबला भोजन पाकर ही दीर्घजीवी बने तथा श्रम उन्होंने कभी छोड़ा नहीं, श्रम ने उन्हें कभी थकाया नहीं।

आयुर्विज्ञानी डकली के अनुसार जो संयमशील हैं और आहार-विहार के प्रति सजग हैं, मांस-मदिरा के गम्भीर दुष्परिणामों से परिचित हैं, क्रोध, भय, चिंता आदि कारणों से मस्तिष्क के आयु-नियंत्रक केन्द्र को स्वतन्त्र रखते हैं उन्हीं में सक्रियता, सजगता, स्फूर्ति और नवीन चेतना देखी जा सकती है। लेकिन जो इन नियमों को अवहेलना करते हैं उन्हें बुढ़ापा ही नहीं घेरता, उसके साथ चलने वाली आधि-व्याधियाँ भी रोग-शोक, चिंता-खीज, न जाने क्या-क्या विकारों रूपी उत्पात मचाकर जीवन को श्मशान के सम-तुल्य बनाकर रख देती हैं।

इन तथ्य-प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वृद्धावस्था सम्बन्धी आम दृष्टिकोण भ्रामक ही है। मनुष्य में यह सहज विशेषता है कि वह अपनी जीवनचर्या को संतुलित रखकर दीर्घायु तथा जीवनपर्यन्त उत्कृष्ट कार्यों को करते रहने में समर्थ बना रह सकता है— इसलिए बूढ़ा होने की बात तो कभी सोचना ही नहीं चाहिए।

राजनीति के क्षेत्र में विन्सटन चर्चिल, बेंजामिन फ्रेंकलिन, डिजरैली, ग्लेडस्टोन आदि अनेकों ऐसे ऐतिहासिक पुरुष हुए हैं जो अपनी वृद्धावस्था की चुनौती के बावजूद बहुत सक्रिय रहे, अपने देश की अमूल्य सेवा में अनवरत रूप से लगे रहे।

पश्चिम एवं भारत के वे कुछ महान पुरुष उल्लेखनीय हैं, जिनकी रचनात्मक शक्ति का ह्रास उनकी ढलती उम्र के कारण कोई नहीं हुआ था और जिन्होंने अपने बुढ़ापे में बड़े महत्वपूर्ण एवं उपयोगी काम करके मानवता की अपूर्व सेवा की।

ऐसे महान पुरुषों में कुछ ये हैं— महान दार्शनिक सन्त सुकरात, प्लेटो, पाइथोगोरेस, होमर, खगोलशास्त्री गैलीलियो, प्रसिद्ध कवि विलियम वर्डसवर्थ, वैज्ञानिक थामस अलवा एडीशन, लेखक निको-

लस कोपर निकस, विख्यात वैज्ञानिक न्यूटन, सिसरो, अलवर्ट आइं-न्स्टीन, टैनीसन, महात्मा गाँधी तथा जवाहर लाल नेहरू।

सुकरात सत्तर वर्ष की आयु में भी विशद व्याख्या करने में जुटे हुए थे। यही वात प्लेटो के सम्बन्ध में भी थी, वे अपनी अस्सी वर्ष की आयु तक बराबर कठोर परिश्रम करते रहे। इक्यासी वर्ष की अवस्था में हाथ में कलम पकड़े हुये उन्होंने मृत्यु का आलिंगन किया।

टेनीसन ने अस्सी वर्ष की परिपक्व अवस्था में अपनी सुन्दर रचना 'क्रासिंग दी बार' दुनिया को प्रदान की। रावर्ट व्राउनिंग अपने जीवन के संध्याकाल में बहुत सक्रिय बने रहे, उन्होंने सत्तर साल की उम्र में मृत्यु के कुछ समय पहले ही अपनी सर्वश्रेष्ठ कवितायें लिखीं।

एच० जी० वैल्स ने अपनी सत्तरवीं वर्षगाँठ के उपरान्त भी पूरे चुस्त और कर्मठ रहते हुए एक दर्जन से ऊपर पुस्तकों की रचना की। यूटोपिया की कल्पना पर आधारित उनकी पुस्तकें जीवन के उत्तरार्ध में ही लिखी गयीं।

सिसरो ने अपनी मृत्यु के एक वर्ष पूर्व तिरेसठ वर्ष की आयु में अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'ट्रीटाइज ऑन ओल्ड एज' की रचना की। कीरो ने अस्सी साल की उम्र में ग्रीक भाषा सीखी।

प्लूटार्क यूनान के माने हुए साहित्यकार हुए हैं। उन्होंने पचत्तर वर्य की आयु के बाद लैटिन भाषा पढ़नी आरम्भ की थी। इटली का प्रख्यात उपन्यासकार वोकेशियो को ढलती उम्र में साहित्यकार बनते की बात सूझी। उस ओर वह पूरी दिलचस्पी के साथ जुटा और अन्ततः मूर्धन्य कथाकार बनकर चमका।

दार्शनिक फ्रेंकलिन की विश्वव्यापी ख्याति है, वे पचास वर्ष

की आयु तक दर्शनशास्त्र से अपरिचित रहे। रुझान इसके बाद ही उत्पन्न हुई और वह उन्हें विश्व विख्यात बनाकर ही रही।

सुकरात ने साठ वर्ष पार करने के उपरान्त यह अनुभव किया कि बुढ़ापे की थकान और उदासी को दूर करने के लिए संगीत अच्छा माध्यम हो सकता है, अस्तु उन्होंने गाना सीखना आरम्भ किया और बजाना भी— यह क्रम उन्होंने मरते दिनों तक जारी रखा। विनोबा कई भाषाओं के विद्वान थे तथा अन्तिम वर्षों में सबसे कठिन चीनी भाषा सीख रहे थे। दामोदर सातवलेकर ने वेदों का भाष्य एवं आर्ष साहित्य पर अपना सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य पिचहत्तर वर्ष के बाद आरम्भ किया एवं सौ वर्ष की आयु तक बराबर लिखते रहे।

अंग्रेजी राजनीति का इतिहास जिनने पढ़ा है वे ग्लेडस्टन के नाम से परिचित हैं, उनने अपना प्रायः सारा ही जीवन राजनीति की सेवा में लगाया और अच्छी लोकप्रियता प्राप्त की। ७० वर्ष की आयु में उन्होंने राज्य का उत्तरदायित्व सँभाला और तीसरी बार भी जब वे प्रधानमन्त्री बने तब उनकी आयु ७३ वर्ष की थी। ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में होमर पर उनका भाषण अत्यन्त शोधपूर्ण माना जाता है, वह उन्होंने ८० वर्ष की आयु में दिया। बुढ़ापे में भी वे चैन से न बैठे, ८५ वर्ष की आयु में उन्होंने 'ओडेसी आफ हॉरेस' ग्रन्थ की रचना की थी।

आठवीं जर्मन सेना का सेनापतित्व पालवान हिन्डैन वर्ग को जब सौंपा गया तब वे ६७ वर्ष के थे। ७८ वर्ष की आयु में वे पार्लियामेंट के अध्यक्ष चुने गये। वे ८७ वर्ष की आयु तक जिये, तब तक उसी अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित रहे एवं सक्रियतापूर्वक संचालन करते रहे।

हैनरीफिलिप मिटेन जब फ्रांस के प्रधानमन्त्री बने तब वे ८

वर्ष के थे। उसी देश की नेशनल असैम्बली के अध्यक्ष स्टवर्ड हैरियो ७९ वर्ष की आयु में चुने गये। ८६ वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास हुआ तब तक वे उस पद का बड़ी योग्यतापूर्वक निर्वाह करते रहे।

लायड जॉर्ज ब्रिटेन के मूर्धन्य राजनेता रहे हैं। ७५ वर्ष की आयु में भी उनकी कार्य शक्ति नौजवानों जैसी थी। चर्चिल ने द्वितीय महायुद्ध काल में जब इंग्लैंड का प्रधानमन्त्री पद सँभाला तब वे ८० वर्ष के थे। जनरल मेकआर्थर ७३ वर्ष की आयु में ४५ वर्ष जैसे सक्रिय थे। दक्षिण कोरिया के राष्ट्रपति सिंगमन ८० वर्ष की आयु में भी पूरी तरह क्रियाशील थे एवं पुनः चुने गये थे।

अमेरिका की सुप्रसिद्ध फिल्म अभिनेत्री 'दादी रेनाल्डस' ने पाश्चात्य जगत में बहुत ख्याति प्राप्त की है। उनकी फिल्म सफलता समूची जीवन साधना का ही एक छोटा अंग है। ६५ साल की उम्र में वे चार बच्चों की माँ और दर्जनों नाती-पोतों की दादी बन चुकी तब उन्हें उत्साह उठा कि जो शिक्षा उन्होंने प्राप्त कर रखी है वह कम है। उन्हें सफल जीवन जीने के लिए अधिक शिक्षा उपार्जित करनी चाहिए। सो वे कॉलेज जाने लगीं और ६९ साल की उम्र में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय की स्नातिका बन गयी, इसके बाद उन्होंने हालीवुड का दरवाजा खटखटाया। जिस आत्मविश्वास के साथ वे बातें करती थीं उसे देखकर डायरेक्टरों ने उन्हें छोटा काम दे दिया। उनके परिश्रम, मधुर स्वभाव और आकर्षक व्यक्तित्व ने उस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर काम करने का अवसर दिया। अस्तु उन्होंने लगातार तेरह वर्षों तक प्रख्यात फिल्मों में काम किया। ८२ वर्ष की उम्र में वे एक विद्वान शरीरशास्त्री से यह परामर्श लेने गयीं कि उनके पेट का मांस थुलथुला हो गया है। यह कसा हुआ कैसे हो सकता है? डाक्टर गैलार्ड हॉजर ने उपचार बताये, तदनुसार उनका

पेट भारमुक्त हो गया। साथ ही डाक्टर ने उसकी इतनी लम्बी आयु और चुस्ती का कारण पूछा तो उनने बताया कि आहार सम्बन्धी सतर्कता—व्यायाम में नियमितता और जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण ही उनकी वृद्धावस्था को जवानी स्तर की बनाये रहने में समर्थ हुआ है। वे जिन्दगी को प्यार करती हैं और हर पल बहुत ही आनन्द का रसास्वादन करते हुए जीना चाहती हैं। मोटे तौर से यही था उनकी वृद्धावस्था में जवानी की स्थिति में बनाये रहने का प्रमुख कारण।

अमेरिका के प्रख्यात तेल व्यवसायी अरबपति राक फेलर पूरे १०० वर्ष जिये, उन्हें कभी बेकार समय गुजारते नहीं देखा गया। एक दूसरे व्यवसायी कोमोडोर विन्डरबिट ने ७० की आयु में व्यापार क्षेत्र में प्रवेश किया और दस वर्ष के भीतर ही वे सफल उद्योगपतियों की श्रेणी में जा पहुँचे। मोटर उत्पादक हैनरी फोर्ड ८२ वर्ष की आयु में भी उतने ही चुस्त पाये गये थे जितने कि वे जवानी में थे।

वस्तुतः स्फूर्ति, चुस्ती, उमंग, उल्लास ही जीवन का प्राण हैं। जब तक वह विद्यमान है तभी ही व्यक्ति आयु की दृष्टि से कितना ही बड़ा क्यों न हो— वह चिरयुवा है। उदासी, निरुत्साहिता, नैराश्य का नाम बुढ़ापा है। चेहरे पर छाई मुर्दनी बताती है कि यह व्यक्ति असमय बुढ़ा गया है, जो अलमस्त हैं, चुस्त हैं, स्फूर्तिवान् हैं, उनकी आयु कितनी भी हो वे कभी बूढ़े नहीं कहलायेंगे।

प्राच्य और पाश्चात्य लोगों के बुढ़ापे में अन्तर

इन दिनों बच्चों की अधिक उत्पत्ति की तरह बूढ़ों की संख्या में भी अतिशय बढ़ोत्तरी हो रही है। एक अनुमान के अनुसार इस सदी के अन्त तक तीन चौथाई जनसंख्या बूढ़ों की होगी। इसे चिकित्सा शास्त्री और औषधियों का चमत्कार और अर्थशास्त्री सुविधा सम्वर्धन का प्रतिफल मानते हैं। पर वस्तुतः इसमें खुशी मनाने जैसा कोई कारण नहीं है। यह बढ़ती हुई विपत्ति का चिन्ह है।

आहार–विहार में उत्तेजनाओं की भरमार होने से कामुकता भड़कती है। इस भड़काव में अश्लील साहित्य, कामुक फिल्मों का उत्तेजनात्मक वातावरण बनाने में भी असाधारण योगदान मिलता है फलतः अल्पायु में ही प्रजनन महत्वाकांक्षा उभर पड़ती है। नर-नारी के बीच रहने वाला एक झीना अन्तर चिरकाल से चला आया है। इसके फलस्वरूप इस प्रसंग में थोड़ी रोकथाम भी थी, पर अब उस प्रकार का प्रतिबन्ध उठ जाने से नर-नारी का कार्यक्षेत्र घुल–मिल गया है। सहशिक्षा से लेकर दफ्तरों में साथ काम करने तक की परिपाटी ने उन प्रतिबन्धों को उठा लिया है जो नर-नारी के सहचरत्व में अब तक बाधक होते रहे हैं। उस नैतिकता की भी एक प्रकार से समाप्ति हो गयी जो नर-नारी के बीच पवित्रता बनाये

रखने वाला पूज्य भाव रखती थी। अब पशु परम्परा का मनुष्यों में भी प्रचलन बढ़ा है। भगिनी, पुत्री, माता और पत्नी का अन्तर पशु वर्ग में नहीं होता। मनुष्य भी अब प्रकृति अनुगमन की दुहाई देकर उसी मार्ग पर चलने लगा है। वह लज्जा और संकोचशीलता अब उठती जा रही है जो इन वर्गों को विशेषतया एक-दूसरे से पृथक रखती थी। अब बचपन के बाद सीधे यौवन आने लगा है। किशोरावस्था में बेहिसाब कटौती हुई है। अल्पायु में ही किशोर अब माता-पिता बन जाते हैं और जो व्यवस्था प्रजनन संख्या को रोकती थी, वह किशोर प्रजनन के रूप में नये सृजन का आधार बनती जा रही है। अल्पायु में उभरी हुई कामुकता, गर्भपात, कृत्रिम निग्रह के रूप में स्वास्थ्य पर घातक असर डालती है। विशेषतया लड़कियाँ तो इस दबाव में बुरी तरह पिस जाती हैं। पढ़ने में मन नहीं लगता। गृहस्थी का अरुचिकर काम सँभालना पड़ता है। बच्चे की उपेक्षा, नारी को सुलभ वात्सल्य नहीं करने देता। कृत्रिम साज-सज्जा भी जिनकी विवशता है अन्यथा वे रूपवती कैसे लगे और पुरुष वर्ग में अपना आकर्षण किस प्रकार स्थिर रखें, इस कुचक्र में पाश्चात्य जगत की एवं आधुनिकता की शिकार अपने देश की नारियाँ बुरी तरह पिसती हैं और वे किसी प्रकार बाहरी साज-सज्जा बनाये रख कर भी भीतर से खोखली होती जाती हैं।

पुरुष को उपार्जन के लिए श्रम तो करना ही पड़ता है। पाश्चात्य देशों में और कितनी ही बुराइयाँ क्यों न हों, आलस्य नहीं है। पूरा वेतन प्राप्त करने के बदले उन्हें पूरा श्रम भी करना पड़ता है। इस थकान को वे शराब सिगरेट से पूरा करते हैं। नशे से थकान तो कुछ हल्की होती है पर नींद लाने का काम उतने भर से नहीं होता, इसके लिए नींद की गोलियों का आश्रय अलग से लेना पड़ता है।

इतनी वस्तुयें मिलकर उनकी जीवनी शक्ति का सफाया करती जाती हैं। यों वंश परम्परा के कारण शरीरों की बनावट भारी-भरकम बनी रहती है।

आज पूरे समुदाय में विनोद, आनन्द का माध्यम कामुकता ही रह गया है। मानसिक क्षेत्र में उसे उत्तेजित करने और शारीरिक क्षेत्र में जीवन-रस को निचोड़ने की दुहरी मार से शरीर इस योग्य नहीं रहता कि उचित वेतन मिलने के लिए जितना श्रम आवश्यक है उतना कर सके। ऐसी दशा में उनकी गणना वयोवृद्धों में होने लगती है। वयोवृद्ध होने का अर्थ है—जवानी में पाली हुई कुटेवों को पूरा करने के लिए प्रचुर परिमाण में सामर्थ्य व धन उपलब्ध कर सकना।" बुढ़ापे के साथ यह एक नयी व्यथा और सम्मिलित हो जाती है।

जिनने अपने शरीर को असंयम से खोखला और विषाक्त औषधियों से गीली लकड़ी जैसा बना लिया है वे धुँआ तो बहुत देर देते रहते हैं, पर न जलने की स्थिति में होते हैं, न बुझने की। जिनने जवानी में असंयम और दुर्व्यसनों से अपने को जीर्ण-शीर्ण बना लिया है वे नशे की तरह बीमारियों के भी अभ्यस्त हो जाते हैं। न वे जल्दी मरते हैं न अच्छे होते हैं। धुँआ देने वाली लकड़ी की तरह अपना अस्तित्व भर देर तक बनाये रहते हैं।

पूर्वोक्त बुढ़ापे में एक अच्छाई यह है कि वे आयु को भगवान की देन मानते हैं। वृद्धावस्था को वे सन्तोषपूर्वक काट लेते हैं। अपने जैसे अन्य साथियों से मेल-मिलाप रखते हुए बुढ़ापे में सन्तोषपूर्वक रहने की बात स्वभाव में सहज ही उतार लेते हैं। अच्छा परलोक प्राप्त करने की आशा से भजन-पूजन, तीर्थयात्रा आदि में समय काट लेते हैं। साधु-सन्तों का दरवाजा ऐसे ही खाली समय वाले लोगों के

साथ बेतुकी बातें करने के लिए खुला रहता है। नाती-पोते-परपोते आदि के हाथों लकड़ी मिल जाने पर स्वर्ग सद्गति की आशा करते हैं। इन सब बातों को लेकर बढ़ती आधुनिकता व टूटते परिवारों के बावजूद पूर्व के वृद्धोका जीवन अपेक्षाकृत अधिक अभावग्रस्त होते हुए भी चैनपूर्वक बीतता है। वे अपने यत्किंचित पूजा पाठ या देवी-देवात्माओं की सहायता से स्वर्ग-सद्गति की आशा अपेक्षा करते हैं। मन हलका रहने के कारण मृत्यु के समय व्यथा वेदना भी कम होती है।

पाश्चात्य जीवन की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। उन्हें भविष्य नहीं भूत याद आता है। भूतकाल में जो विलासिता-कामुकता व्यवहार में लाते रहे, उसकी स्मृतियां उन्हें बहुत बेचैन करती हैं। धन और यौवन के अभाव में भूतकालीन विलासिता की वन्दना भर कर सकते हैं। व्यवहार में परिणत करने की कोई स्थिति "ओल्डमेन्स होम" में रहते हुए बनती नहीं।

पाश्चात्य मरणोत्तर जीवन बहुत लम्बा होता है। धारणा यह है कि प्रलय के बाद नया जन्म मिलता है, तब तक कब्र में जीवन की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी यह लम्बे सनय की कष्टसाध्य प्रतीक्षा की चिन्ता ही निराशा उत्पन्न करती है। संयुक्त परिवार प्रथा न होने के कारण अंश-वंश के कितने ही सदस्य होते हुए भी यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे लोग कम से कम मन बहलाने के लिए ही सही, कभी-कभी, पर्व पर ही सही साथ हो लिया करेंगे। उठती आयु वालों को अपनी समान आयु के सहचर चाहिए। पुरानी व नयी पीढ़ी के बीच इतनी बड़ी खाई पैदा हो चुकी है कि उनका साथ-साथ रहना तो दूर, यदा-कदा मिलना-जुलना भी दुर्लभ होता है। ऐसी दशा में उन्हें सर्वथा निराश जीवन जाना पड़ता है। यों वयोवृद्धों

को सरकारी पेन्शन मिल जाती है, पर उससे निर्वाह भर ही कठिनाई से पूरा हो पाता है। साथी–सहचर कोई होता नहीं। होता है तो वे सभी मिल-जुलकर अपने भूतकाल के साथ वर्तमान की तुलना करते हुए खिन्न, निराश और वर्तमान स्थिति के प्रति असन्तोष व्यक्त करतें ही पाये जाते हैं।

वृद्धों की आयु तो भारत में भी बढ़ी हैं, पर वे बाल–बच्चों के साथ खेलने-खिलाने में अपने बीते बचपन को वापस लौटा लेते हैं। साथ ही भजन और देवी-देवताओं की कृपा से परलोक में सद्गति के सपने भी देखते हैं। मन बहलाने तक तो ठीक है. पर भारतवासियों का बुढ़ापा भी कम भारभूत नहीं है। एक कठिनाई यह है कि आराम करने की सलाह तो सब ओर से मिलती है, पर जीवन का अभ्यास इस नये प्रयोग में असफल रहता है। कुछ किए बिना चैन नहीं पड़ता, विशेषतया प्रगतिशील वर्ग के लोगों की मानसिक बनावट ऐसी होती है कि सोने का सीमित समय मिलने के उपरान्त उनका दिन नहीं कटता, दिल नहीं लगता है। कुछ न कुछ करने को जी चाहता है। मात्र इसलिए नहीं कि हाथ-पाँव चलते रहें और समय कटता रहे वरन् एक छिपी हुई प्यास अहंकार पूर्ति की भी होती है—अधिकार हाथ में रखने की, वह कैसे सम्भव हो। व्यापार में हस्तक्षेप कार्यकारी लड़कों को रास नहीं आता और घर बैठे रहने पर बच्चों को मस्ती रोकनी पड़ती है। महिलाओं को फूँक-फूँककर चलना पड़ता है। मर्जी से कुछ करती हैं या हँसती-हँसाती हैं तो कुछ खीझती हैं। घर में विग्रह खड़ा होता है।

वृद्धाओं का हाल इससे भी बुरा होता है। घर को उनने बनाया संजोया था पर अब बहुओं के हाथ में सब कुछ चला जाने से वे हस्तक्षेप करने की स्थिति में नहीं होतीं। पुरानी और नई संस्कृ-

तियों में तालमेल नहीं बैठ पाता। अपने ढंग से वे घर चलाती रही हैं पर अब स्थिति वैसी नहीं रही। नये प्रचलन उन्हें सुहाते नहीं और पुरानी परम्पराओं को शत-प्रतिशत निबाहने के लिए बधुयें या वयस्क लड़की-लड़के तैयार नहीं होते। ऐसी दशा में वे अपने को असहाय पाती हैं और मन ही मन खीझती हैं। बुढ़ापा इसलिए भार रूप नहीं होता कि उन्हें काम ज्यादा करना पड़ता है वरन् खीझ इस बात की होती है कि कभी वे सर्वेसर्वा थे पर अब वे भार बनकर उपेक्षित रह रहे हैं।

संभावना को समय से पूर्व समझ लेना चाहिए और नया घोंसला बनाने की योजना बनानी चाहिए ताकि परिवार वाले भी शिष्टाचार निवाहते रहें और अपने को भी अनचाही सलाह देने या काट-छाँट करने पर तिरस्कार सहने की स्थिति में होकर न गुजरना पड़े।

ठाली बैठना शारीरिक और मानसिक दृष्टि से एक ऐसी विपत्ति में फँसना है जिसमें अभ्यस्त जीवन में पिछले दिनों कभी भी नहीं गुजरना पड़ा।

समस्या का वास्तविक हल निकालने की दृष्टि से भी और समाज की सामयिक आवश्यकताओं के समाधान में योगदान मिलने की दृष्टि से रिटायरों को शास्त्रकारों से लेकर विचारशीलों तक का एक ही परामर्श है कि उन्हें लोकहित के परमार्थ प्रयोजनों में लगाने का नया कार्यक्रम अपनाना चाहिए। इससे उन सभी असमंजसों से छुटकारा मिल जाता है जो घर घुसे रहने पर अनिवार्य रूप से हैरान करते और तूफान उत्पन्न करते हैं।

वानप्रस्थ का मतलब कहीं वन-गुफाओं में चले जाना नहीं

और न किसी आश्रम में कोठरी लेकर वहाँ पूजा-पाठ के वहाने एकान्तवास में जाने या मटरगश्ती में मारे-मारे फिरने से है। वरन् ऐसा योजनाबद्ध क्रिया-कलाप अपनाने से है जो लोगों को कृत-कृत्य बनाता है। समाज में श्रेय मिलता और सम्मान मिलता है। साथ ही अपनी प्रमुखता जताने एवं दूसरों का मार्गदर्शन करने का अवसर मिलता है।

युवावस्था में प्रवेश करने पर पत्नी सुख, पैसा कमाना, यार-दोस्त, शौक, मौज, जैसी उत्साहवर्धक परिस्थितियाँ सामने आती रहती हैं। उनमें उत्साह भी होता है और श्रम भी होता है, साथ ही उपलब्धियों का श्रेय भी मिलता है। उन प्रयासों में उस अवस्था का सही सदुपयोग भी हो जाता है। स्त्री को सजाने, बच्चों को पढ़ाने, घर बनाने, नौकर रखने आदि के ऐसे काम बन पड़ते हैं जिनसे अहंकार की भी पूर्ति होती रहती है और लोभ-मोह की उस यथासम्भव पूर्ति का संतोष भी रहता है। इस प्रकार जवानी ऐसी कट जाती है जिसकी याद बुढ़ापे में भी सताती रहती है और पश्चात्ताप रहता है कि जवानी के दिन देखते-देखते गुजर गये और अब भारभूत बुढ़ापा एक-एक दिन गिनते हुए काटना पड़ रहा है।

इसका समाधान एक ही है कि नौकरी या कृषि व्यवसाय से निवृत्त होते ही वानप्रस्थ का नया जीवन क्रम अपनाया जाना चाहिए। उसके लिए सुविधानुसार नया घर या घर से बाहर अपनी अलग व्यवस्था बनाकर रहा जा सकता है और सार्वजनिक सेवा का योजना बद्ध कार्यक्रम बनाकर उसमें जुटा जा सकता है।

बुढ़ापे की शान सफेद बालों से है। उस कार्यक्रम में शारीरिक श्रम की नहीं प्रशिक्षण और परामर्श की आवश्यता पड़ती है। छुट-पुट करना भी पड़े तो उससे दबाव नहीं पड़ता वरन् स्वास्थ्य ठीक

रखने का सहारा ही मिलता है। स्वयं थोड़ा-सा श्रम करते ही वे लोग हाथ बँटाने के लिए दौड़ पड़ते हैं जिनके निमित्त सेवा-साधना का उपक्रम अपनाया गया है। वास्तविकता तो यह है कि वृद्धावस्था और थकान दो अलग-अलग चीज हैं। बुढ़ापा निरानन्द होता है, यह मानना गलत है। मन बूढ़ा होता है न जवान। वृद्धावस्था की अपनी उपयोगिता है। परिपक्व ज्ञान और अनुभव जिस स्थिति में मनुष्य के पास एकत्रित हो, उसके बारे में यह सोचा नहीं जाना चाहिए कि यह आयु बेकार है। मात्र दौड़ना ही जवानी नहीं है। जिन दिनों कोई व्यक्ति परिपक्व बुद्धि होता है वह अवधि जवानी से किसी भी प्रकार कम मूल्यवान नही है।

सिर पर सफेद बाल और चेहरे पर झुर्रियों का होना किसी व्यक्ति का मूल्य घटाता नहीं बड़ाता है। क्योंकि ऐसे व्यक्ति के पास संकलित अनुभव अन्य अवस्था वालों की तुलना में सम्मान पाने के लिए बहुत कुछ होते है। वह अपने संकलित अनुभव के सहारे ऐसे परामर्श दे सकता है, जिसके लिए अन्य आयु वाले तरसते हैं।

हँसने और हँसाने की कला याद हो तो वयोवृद्ध अन्य आयु वालों की तुलना में अधिक प्रसन्न दीख पड़ते हैं। मात्र जवानी की मजबूती और फूर्ती ही सब कुछ नहीं है। वृद्धावस्था की गम्भीरता का महत्व है। कम परिश्रम करने पर ही वृद्धजन ऐसे परामर्श दे सकते हैं जिनके सहारे अधिक लाभान्वित होना बन पड़े। सौजन्य और शालीनता सीखने के लिए हर आयु के व्यक्ति को वृद्धजनों के पास जाना पड़ता है।

सुखद बुढ़ापे की पूर्व से तैयारी करें

बुद्धिमानों का कथन है कि वर्तमान को ऐसा बनाना चाहिए जिससे भविष्य में पछताना न पड़े। इसका तात्पर्य यह है कि भविष्य

की सम्भावनाओं को ध्यान में रखने हुए वर्तमान को सुव्यवस्थित बनाया जाय। यदि भविष्य अच्छा होना निश्चित है तब तो कोई बात नहीं। किन्तु यदि ऐसी आशंका हो कि कठिनाई आनी संभावित है तो तो उनसे समय रहते निपट लेना अधिक दूरदर्शिता पूर्ण है।

सुख सुविधा के दिनों में लोग सोचते रहते हैं कि सदा यही स्थिति बनी रहेगी। यदि ऐसा निश्चय ही हो तो किसी प्रकार निश्चिन्त भी रहा जा सकता है पर यदि यह प्रतीत हो कि अगले दिनों आपत्तियों एवं मुसीबतों का सामना करना पड़ सकता है तब तो उसके सम्बन्ध में आवश्यक विचार पहले से ही कर लेना चाहिए। अन्यथा अकस्मात बुरा दिन सामने आ खड़ा होने पर होश-हवास गुम हो जाते हैं। हाथ-पाँव फूल जाते हैं और कुछ करते-धरते नहीं बनता।

लोग चोरी बेईमानी करते हैं। तात्कालिक लाभ देखते हैं, पर बदनामी, अप्रामाणिकता एवं राजदण्ड के जो परिणाम भुगतने पड़ेंगे उन्हें भूल जाते हैं। विलासित में डूबे रहते हैं और शक्तियों का भण्डार चुक जाने पर जिस दुर्बलता का सामना करना पड़ेगा उसकी बात भूल जाते हैं। पढ़ने-लिखने की आयु ऐसे ही आवारागर्दी में गँवा देते हैं और शिक्षा की न्यूनता के कारण आजीवन जिस पिछड़ी स्थिति में रहना पड़ता है उसके संबंध में नहीं सोचते। ऐसी दूर-दर्शिता मनुष्य को तत्काल तो अच्छी लगती है पर जब दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं, तब याद आता है कि चूकने से कितनी क्षति सहन करनी पड़ी।

मौत-बुढ़ापे की बात भूले रहने वाले भी कठिनाई का दिन

सामने आने पर पछताते और समझ पाते हैं कि समय रहते सतर्कता न बरतने की अन्त में कितनी व्यथा-वेदना सहनी पड़ी।

जीवित रहते महत्वपूर्ण काम बन सकते थे और जीवन सुख-शान्ति से भरा-पूरा बीत सकता था, पर जीवन व्यर्थ के कार्यों में गुजर गया तब उसे लौटाने और भूल सुधारने की कोई गुंजायश नहीं रहती। पूर्णायु तक जिया जा सकता था, पर नशेबाजी जैसे दुर्व्यसनों से अपने को जीर्ण-शीर्ण बना लेने पर आधी आयु बीतते-बिताते जराजीर्ण स्थिति का दुःख भुगतते हुए, बीमारियों का कष्ट सहते हुए जिस प्रकार प्रयाण करना पड़ता है, उसे सहन करते समय हाथ मलते रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं बन पड़ता।

यदि आरम्भ से ही संयम और सतर्कता बरतते रहा जाय तो तो शारीरिक दृढ़ता काम-चलाऊ स्थिति में आजीवन बनी रह सकती है। इसी प्रकार मस्तिष्क पर चिन्ता, निराशा, उद्विग्नता जैसी उत्तेजनाओं का दवाब पड़ने दिया जाय तो अधिक आयु बीतने पर ज्ञान और अनुभव अक्षुण्ण ही नहीं वरन् और भी अधिक विकसित हो सकता है। कच्चे आम की तुलना में पका आम अधिक स्वादिष्ट होता और मँहगा बिकता है। फिर कोई कारण नहीं कि बुढ़ापा अधिक सम्मान और सन्तोष प्रदान न कर सके। काले रंग से श्वेत को अधिक पसंद किया जाता है। काली चमड़ी वालों की तुलना में गोरी चमड़ी वाले अधिक सुन्दर लगते हैं। फिर कोई कारण नहीं कि काले रंग वाले अनुभव हीन दिनों की तुलना में परिपक्व आयु होने पर चाँदी जैसे सुन्दर लगने वाले श्वेत बाल सुहावने न लगें और आयु बढ़ने के साथ सम्मान न बढ़ाते चलें।

जिन्हें बुढ़ापे की अशक्तता अखरने की कल्पना हो उन्हें उसकी रोकथाम युवावस्था में ही आरम्भ कर देनी चाहिए। संयमपूर्वक रहा जाय, प्रकृति का अनुशासन पाला जाय और दिनचर्या में व्य-

स्तता तथा नियमितता का अभ्यास रखा जाय तो प्रौढ़ता लम्बे समय तक बनी रहेगी। आयु के साथ-साथ कड़े काम करने की क्षमता तो घटती है पर हल्के और उपयोगी कार्यों में लगे रहना मनोरंजक लगता है। भारभूत प्रतीत नहीं होता। जवानी के दिन आराम तलबी में काट लेने पर जंग लगे औजार की तरह काया एक प्रकार से निकम्मी हो जाती है। जोड़ जकड़ जाते हैं और चलने फिरने तक में कठिनाई होती है। यही बात अति श्रम करने पर मांस पेशियों को अत्याधिक थका डालने पर होती है। पहलवानों का बुढ़ापा कष्टकर होता है। जवानी में अत्यधिक दवाव सहते-सहते बुढ़ापा आने पर वे दुखने की स्थिति में आ पहुँचती हैं। अति का निठल्लापन और अति का परिश्रम बुढ़ापे को शारीरिक कष्टों से घेर लेता है। नशेवाजी, कामुकता जैसे दुर्गणों की हानि आरम्भिक दिनों में उतनी नहीं अखरती जितनी कि बुढ़ापे में बीमारियाँ कष्ट-दायक सिद्ध होती है।

उचित यह है कि हल्की-फुल्की जिन्दगी जी ली जाय मन मस्तिष्क पर खीझ उद्विग्नता का दवाब न पड़ने दिया जाय। विनोदी स्वभाव जरा जीर्ण स्थिति में भी प्रसन्नता बनाये रखता है और दूसरों को यह प्रतीत नहीं होने देता कि भारी या कष्टकर जीवन जिया जा रहा है। बुढ़ापे में मन:संस्थान दुर्बल हो जाता है और जवानी की भूलों को सुधारने या नये सिरे से नई आदतें डालने की स्थिति में नहीं रहता। यह तथ्य यदि स्मरण रहे तो युवावस्था में ही अपने स्वभाव को हँसोड़ या मुस्कान भरा बनाये रहने की आदत डाली जा सकती है।

बच्चों की पहचान यह है कि वे सदा भविष्य की बात करते और सोचते हैं। बूढ़ों का स्वभाव इसके विपरीत होता है उन्हें भूत-

काल की याँद संताती रहती है और गुजरे हुए जमाने की याद करते रहते हैं।

भूत डरावने होते हैं। जो समय गुजर चुका वह लौटने वाला नहीं, भले ही वह बुरा रहा हो या अच्छा। ऐसी दशा में उसका बखान करने से जो गुजर गया उसके सपने देखते रहने में कोई लाभ नहीं। यही बात भविष्य के बारे में भी है। वह बालकों को उत्साह-वर्धक प्रतीत हो सकता है। वे रंगीले सपने देखते रह सकते हैं, पर वयोवृद्धों का भविष्य तो अधिक अशक्तता का और मौत के मुँह में जाने का ही हो सकता है। इसलिए उसकी भयानकता को सोचते रहना अपने वर्तमान को अधिक नीरस और डरावना बनाना है। अच्छा हो वृद्धजन मात्र वर्तमान की बात ही सोचें और ऐसी योजना बनायें ताकि समय को अधिक उपयोगी कार्यों में लगाये रहा जा सके।

पुरातन काल में ढलती आयु वानप्रस्थ के रूप में बिताई जाती थी ताकि पुण्य परमार्थ में संलग्न रहकर जो क्षण हाथ में है उनका श्रेष्ठतम सदुपयोग करते हुए अपनी सदाशयता पर गर्व किया जा सके।

बुढ़ापे की रोकथाम सम्भव भी और सरल भी

नियति व्यवस्था में उत्पादन, अभिवर्धन, अवसान और समाधान की चार प्रवृत्तियाँ चलती हैं। यह निर्धारण सभी प्राणियों और पदार्थों पर समान रूप से लागू होता है। उत्पादन अभिवृद्धि का क्रम चलता है, यह एक सीमा तक पहुँचकर परिपक्व हो जाता है, इसके उपरान्त ढलने की बारी आती है। क्षीणता चल पड़ती है, दुर्बलता बढ़ती है और अन्ततः वह समय आ पहुँचता है जब उसका स्वरूप बदले। वस्तुतः आमूल-चूल परिवर्तन को ही मरण कहते हैं। वही पदार्थ फिर नया रूप लेता है। इस प्रकार कबाड़े को गलाने और नये उपकरण ढालने के गोरखधन्धे में प्रकृति का लुहार लगा रहता है, उसकी भट्टी गरम ही रहती है। इतने पर भी इस परिवर्तन क्रम की गति को शिथिल रखना या अधिक ईंधन झोंककर खेल जल्दी खत्म कर देना बहुत कुछ मनुष्य की बुद्धिमत्ता और संयमशीलता पर निर्भर है।

मनुष्य सदा स्वस्थ या प्रौढ़ रहना तो चाहता है, पर व्यवस्था उसकी इच्छानुरूप बन नहीं पाती। यौवन देर तक ठहरता नहीं और अनपेक्षित बुढ़ापा आ धमकता है, इस स्थिति में कुरूपता भी बढ़ती है और असमर्थता भी। अन्त क्या होता है ? इसे सभी जानते हैं। बूढ़े के लिए मृत्यु के मुख में जाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं।

फिर भी इच्छा तो बनी ही रहती है कि बुढ़ापा देर में आये और अधिक दिन जीने का अवसर मिले। जिन्दगी में ऐसा ही कुछ रस और आकर्षण है कि उसे सहज छोड़ते नहीं बनता। अब तक बुढ़ापे को रोकने और मरण का दिन अधिक आगे धकेलने के लिए अनेकानेक प्रयास होते रहे हैं। उनमें आंशिक सफलता ही मिली है फिर भी आशा बलवती है— प्रयत्न क्रम भी रुका नहीं है। जितना कुछ हाथ लगे उतना ही सही, इस दृष्टि ने उस प्रयास में अभी भी विराम नहीं लगने दिया है। दीर्घजीवन की बुढ़ापा रोकने की शोध एवं चेष्टा अभी भी चल रही है।

इस सन्दर्भ में खोज करने वालों ने जो तथ्य ढूँढ़ निकाले हैं, उनमें चार प्रमुख हैं (१) शरीर का तापमान कम करना (२) ठन्डे वातावरण में रहना (३) प्रजनन में अति न बरतना (४) मस्तिष्कीय उद्विग्नता से बचना। यह चार अवलम्बन ऐसे हैं, जिन्हें अपनाकर प्रकृति व्यवस्था के साथ सहयोग करते हुए समर्थता को देर तक बनाये रहा जा सकता है। इन चारों प्रयोगों को भारत के ऋषिकल्प व्यक्ति अपनी जीवनचर्या में सतर्कतापूर्वक समाविष्ट करते रहे हैं। फलतः उन्हें सामान्यजनों की तुलना में कहीं अधिक लम्बा जीवन जीने का अवसर मिला। हिमालय के शीतल क्षेत्रों को उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र चुना। स्वल्पाहार–उपवास अपनाया। पेट पर भार लदने और तापमान बढ़ने जैसा प्रसंग न आने दिया। ब्रह्मचर्य को साधना का आवश्यक अंग माना और स्थिति प्रज्ञ जैसा निस्पृह स्वभाव बनाकर सन्तुष्ट रहने एवं हँसते-हँसाते समय गुजारने का अभ्यास किया। प्रकृति से विद्रोह करने की अपेक्षा सहयोग देने की दूरदर्शिता अपना कर उन्होंने जीवन सम्पदा का समुचित लाभ उठाया। उन्हीं लाभों में एक बुढ़ापे को देर तक रोके रहना और कम से कम कष्ट-दायक बनने देना भी है। वह राजमार्ग अभी भी उन सब के लिए

खुला है जो जादुई तरीके अपनाने की अपेक्षा प्रकृति क्रम के साथ तालमेल बिठाकर अधिक नफे में रहने की नीति पर विश्वास करते हैं। आधुनिक विज्ञान ने इस सन्दर्भ में रसायनें ढूँढ़ने और शल्य-क्रिया की असफलता देखते हुए प्रकृति सहयोग से बुढ़ापा रोकने पर जोर देना आरम्भ किया है।

शरीर का तापक्रम घटा देने से बुढ़ापा देर में आता है, यह सिद्धांत विज्ञान क्षेत्र में अब मान्यता प्राप्त करता जा रहा है। इस तापक्रम के सन्दर्भ में दो बातें कही जाती हैं— एक यह कि वातावरण ठण्डा हो, दूसरी यह कि शरीर में पाई जाने वाली स्वाभाविक गर्मी सामान्य तापमान से घटाकर किन्हीं उपायों से कम कर दी जाय। दोनों ही सुयोग मिल सके तब तो उसे सोना सुगन्ध का संयोग कहा जायेगा।

कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी के किये प्रयोगों में सिद्ध हुआ है कि शरीर का तापमान तीन डिग्री घटा दिया जाय तो आयुष्य तीस वर्ष बढ़ सकती है।

प्रजनन क्षमता सही और देर तक बनी रहे— इसके लिए आवश्यक यह है कि उस तन्त्र का अनावश्यक रूप व्यतिक्रम न हो। यौनाचार में अति न वरती जाय। बच्चे बहुत न हों। रति कर्म में संयम बरता जाय। लम्बी आयुष्य पाने वालों और जल्दी मरने वालों के बीच यह प्रमुख अन्तर पाया जाता है। दीर्घजीवी प्राणी प्रजनन में उपेक्षा वरतते, इसके विपरीत जिन्हें जल्दी मरना है वे जल्दी-जल्दी उस काम को निपटाते हैं, उतावली बरतते हैं और शक्ति का भण्डार समाप्त करते हैं, जीवन लीला समाप्त करते हैं। मनुष्यों के लिए भी यही बात है। जवानी में बुढ़ापे के दृश्य उपस्थित करने में सबसे बड़ा कारण अपरिपक्व स्थिति में ही यौनाचार पर उतारू

होना, कम आयु में ही कई बच्चे पैदा कर लेना है— इस प्रयास में स्त्रियाँ पुरुषों से भी अधिक घाटे में रहती हैं। उन्हें भ्रूण पालने और दूध पिलाने में अपने को अपेक्षाकृत अधिक निचोड़ना पड़ता है। यौनाचार में उन्हीं को अधिक घाटा पड़ता है।

अमेरिकी जीव-विज्ञानी डा० बैरोज ने इस प्रयोग के लिए स्वल्प जीवी समुद्री जन्तु रोटिकर को चुना। वह मात्र १८ दिन जीवित रहता है, उसके निवास जलाशय का तापक्रम १० डिग्री घटा दिया, इससे इसका जीवन काल दूना हो गया। इसके अतिरिक्त उसी प्राणी पर यह प्रयोग भी किया गया कि एक को भरपूर भोजन की असुविधा दी गई किन्तु दूसरे को आधे पेट रहने जितनी सामग्री दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि बाहरी तापमान कम रहने और पाचन में ईंधन कम जलने की स्थिति में उसका जीवनकाल तीन गुना हो गया। इससे इस रहस्य पर से पर्दा उठा कि अधिक खाने से भीतरी गर्मी बढ़ती है। यदि स्वल्पाहार का स्वभाव डाला जाये तो पाचन भी ठीक हो और अनावश्यक भार वहन में जो जीवनी शक्ति का अपव्यय होता है वह भी रुके। तापक्रम कम रखने का उपयुक्त तरीका कम भोजन से काम चला लेना है। कम भोजन करने पर ठीक प्रकार से पचा हुआ आहार कहीं अधिक शक्ति प्रदान कर देता है जबकि बहुत खाने वाला पचाने के लिए पेट के अखाड़े में मल्लयुद्ध लड़ता रहता है।

लोग बहुधा आवश्यकता से बहुत अधिक खाते हैं, जो खाते हैं वह भी स्वाद के लोभ में इस स्तर का बना लिया जाता है जो पोषण देने की अपेक्षा पाचन की जटिलता के कारण उल्टा प्राण सोखने लगे। उत्तेजित पाचन प्रक्रिया अनावश्यक तापमान की वृद्धि करती है और दीर्घजीवन में भारी व्यतिरेक खड़ा करती है। विशेषज्ञों का

कथन है कि जितना खाया जाता है उससे आधे में ही काम चल सकता है, इससे आर्थिक बचत और समय की बर्बादी रुकने का अतिरिक्त लाभ मिलता है।

आयुष्य विज्ञान के संशोधकों ने जीवन और मरण का सम्बन्ध मस्तिष्कीय सक्रियता के साथ जोड़ा है। उनने अपने प्रयोगों में पाया कि मरने के दिन निकट आने पर मनुष्य की मस्तिष्कीय उद्विग्नता बढ़ जाती है, वह अधिक सोचता और अधिक परेशान रहता है। इसका प्रभाव नाड़ी संस्थान पर पड़ता है, जीवकोशों का नया प्रजनन घट जाता है। नये जीवकोश बनाने में असमर्थ रहने पर वे कुछ काम ढूँढ़ते हैं और आपस में ही लड़भिड़ कर एक दूसरे को कुतरने-निगलने लगते हैं— यह मरण की पूर्व भूमिका है। चिन्तित मनः-स्थिति में जीवनकाल जल्दी समाप्त होता है जबकि प्रसन्न और अलमस्त रहने वाले अभावों के बीच रहकर भी लम्बी जिन्दगी जी लेते हैं। शक्ति भण्डार के जल्दी चुकने में मस्तिष्कीय सक्रियता का अधिक होना भी बुरा है। इसी कारण तथाकथित बुद्धिजीवी सामान्य जनों की अपेक्षा जल्दी मरते हैं।

समाधि, अभ्यास एवं प्राण नियमन के सहारे भी क्षरण की अति रोकी जा सकती है, पर वे उपचार विशेषज्ञों से ही बन पड़ते हैं। समाधि तो और भी कठिन है, उसमें हृदय की धड़कन बन्द हो जाती है और तापमान बहुत ही कम रह जाता है। ऐसी दशा में जीवकोशों को रात्रि शयन जैसा विश्राम मिल सकता है और वे नये सिरे से नई स्फूर्ति के साथ काम करना आरम्भ कर देते हैं। हर समाधि को एक कायाकल्प माना जाता है। यों औषधि उपचार के सहारे भी छोटे-बड़े कल्प चलते हैं, पर समाधि का स्तर उन सबमें ऊँचा है। इतने पर भी वह सब विशेषज्ञों के संरक्षण में चलने वाला, मनस्वी लोगों द्वारा अपनाया जा सकने वाला उपक्रम ही है।

प्राणायामों के कुछ ऐसे उपचार हैं, जिनसे श्वांस क्रम के व्यतिक्रम से उत्पन्न होने वाली क्षति को रोका जा सकता है। इस आधार पर भी तापमान के नियमन में सहायता मिल सकती है।

जिन पर बुढ़ापे का प्रभाव न्यूनतम हुआ है और जो मरण-पर्यन्त सक्षम बने रहे उनकी जीवनचर्या का पर्यवेक्षण करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि जीवनी शक्ति के भण्डार को चुका देने वाली उद्धत आतुरता न बरती जाय। आहार-बिहार का संयम रखा जाय तो अजर-अमर होने जैसी बात न बनने पर भी मनुष्य लम्बे समय तक निरोग जीवन जी सकता है और अपनी क्षमता इस स्तर की बनाये रह सकता है जिसमें बुढ़ापे को कुरूप, कष्टदायक एवं अभिशाप न कहना पड़े।

मुद्रक— युग निर्माण प्रेस, मथुरा